International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 16-08-2021, Accepted: 01-09-2021, Published: 17-09-2021
Volume 7, Issue 5, 2021, Page No. 43-45

तुलनात्मक साहित्य और अनुवाद

डॉ. योगेशभाई प्रतापसिंह झाला

असिस्टेंट प्रोफेसर (हिंदी विभागाद्यक्ष), श्री के. आर. देसाई कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, झालोद, गुजरात, भारत

सारांश

'तुलनात्मक साहित्य' एकाकी साहित्य से सर्वथा भिन्न है। यह एक स्वतंत्र साहित्यिक विधा न होकर अध्ययन की एक विशेष पद्धत्ति मात्र है । इसमें कौन सा साहित्य या कौन सा साहित्यकार श्रेष्ठ है और कौनसा निम्न है, पर विचार नहीं किया जाता किंतु दोनों साहित्य या साहित्यकारों के समान और भिन्नता के बिंदुओं पर चर्चा की जाती है। इस प्रकार 'तुलनात्मक साहित्य' अध्ययन की व्यापक दृष्टि प्रदान करता है। जिसमें अनुवाद सहायक सिद्ध होता है। विश्व साहित्य के अध्ययन के लिये भी 'तुलनात्मक साहित्य' और अनुवाद महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

मूल शब्द: तुलना, तुलनात्मक अध्ययन, वैश्विक एकता, मानवीय मूल्य, भाषांतरण

प्रस्तावना

तुलनात्मक साहित्य अर्थात ऐसा साहित्य जिसका मूल आधार तुलना हो। पिछले कुछ वर्षों से साहित्य जगत में तुलना की प्रवृत्ति विशेष रूप से दिखाई देती है। किंतु यहां एक बात स्पष्ट करनी अत्यंत आवश्यक है कि 'तुलनात्मक साहित्य' वास्तव में साहित्य की अन्य विधाओं जैसे- कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध, जीवनी आदि की तरह एक साहित्यिक विधा न होकर एक पद्धति मात्र है, जो खास तौर पर अनुसंधान कार्यों के लिए अधिक प्रयोग में लाई जाती है। तुलना की इस पद्धति की व्यवस्थित शुरुआत 19वीं शताब्दी में सबसे पहले पाश्चात्य देशों में हुई। इसके लिए अंग्रेजी में 'कंपैरेटिव लिटरेचर' शब्द प्रचलित हुआ और हिंदी में 'तुलनात्मक साहित्य' इसके समानार्थी शब्द के रूप में स्वीकार कर लिया गया। कुछ लोग इसे 'कंपैरेटिव स्टडी' या 'तुलनात्मक अध्ययन' के नाम से भी जानते है। डॉ. नगेंद्र के शब्दों में कहे तो- "तुलनात्मक साहित्य जैसा कि नाम से स्पष्ट है, साहित्य का तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन प्रस्तुत करता है। यह पदनाम वास्तव में एक प्रकार की न्यूनपदीय प्रयोग है और साहित्य के 'तुलनात्मक अध्ययन' का वाचक है।"[1]

वैसे तुलना तो मनुष्य जीवन का एक स्वभाव ही बन गया है। अतः यह शब्द किसी के लिए सर्वथा नया नहीं है। व्यक्ति जीवन के हर क्षेत्र में किसी न किसी रूप में तुलना करता ही है। और जीवन में भी जब कोई व्यक्ति अपने को छोटा या बड़ा, अमीर या गरीब, सुखी या दुःखी, उच्च या नीच कहता है तो वह प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से किसी ने किसी से तुलना ही करता है। तुलना कि यह प्रवृत्ति न केवल मनुष्य जीवन में बल्कि साहित्य जगत में भी दिखाई देती है। जैसे-

"उपमा कालिदासस्य भारवेर्थगौरवम् ।
दण्डिन: पदलालित्यं माघे संति त्रयो गुणा: ।।"

अर्थात 'कालिदास' उपमा के कवि माने जाते हैं, 'भारवी' अर्थ गौरव के कवि है और 'दंडी' पद लालित्य के लिए विख्यात है। किंतु 'माघ' ऐसे कवि है, जिसमें उक्त सभी गुण मौजूद हैं।

प्रस्तुत पंक्तियों में कालिदास, भारवी और दंडी की तुलना में माघ कवि को श्रेष्ठ बताया गया है। हिंदी साहित्य में भी तुलना की यह प्रवृत्ति बराबर मिलती है, जैसे-

"सूर सूर तुलसी ससी उड़गन केशवदास। अब के कवि खद्योत सम जहँ तहँ करत प्रकाश ॥"

इस प्रकार मध्यकाल में बहुत से कवियों और आधुनिक काल के बहुत से रचनाकारों को लेकर तुलना की यह प्रवृत्ति प्रारंभ में दिखाई देती है। 'हिंदी साहित्य में तुलनात्मक शोध की शुरुआत हिंदी के दो रचनाकारों या दो रचनाओं के तुलनात्मक अध्ययन द्वारा हुई। प्रारंभिक दौर में देव और बिहारी, कबीर और जायसी, सूर और तुलसी आदि कवियों और उनकी कृतियों को आधार बनाकर छोटे कवि और बड़े कवि की चर्चा साहित्य में होती रही। तत् पश्चात छायावाद युग का आगमन हुआ, इस दौर में प्रसाद और पंत, निराला और महादेवी आदि की जाने लगी। शनैः शनैः राष्ट्रीय आंदोलन जो कि संपूर्ण देश में व्याप्त हुआ, जिसके परिणाम स्वरूप भिन्न-भिन्न भाषाओं का साहित्य एक-दूसरे के करीब आने लगा और उस दौर में अधिक चर्चा इस बात को लेकर की जाने लगी कि बंगला का हिंदी पर क्या प्रभाव है इसी तरह से तुलनात्मक अध्ययन द्विजेंद्रलाल राय और प्रसाद के नाटकों को लेकर किया जाने लगा। इस के साथ ही बंगला के बंकिमचंद्र और शरतचंद्र का हिंदी के प्रेमचंद के उपन्यासों पर पड़ने वाले प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन किए जाने लगा। इस प्रकार रवीन्द्रनाथ का निराला पर क्या प्रभाव पड़ा, शैली और कीट्स का पंत पर क्या प्रभाव पड़ा तथा रामकुमार वर्मा और अश्क पर के प्रभाव की शोध इस पद्धति के अंतर्गत की जाने लगी। इस प्रकार तुलनात्मक शोध का क्षेत्र विस्तृत होता गया, स्थिति यहां तक आ पहुंची कि आज शोध के क्षेत्र में तुलनात्मक शोध का ही बोलबाला है।'[2]

इस प्रकार देखा जाए तो प्रारंभ में एक ही भाषा के दो अलग-अलग रचनाकार और उनकी रचनाओं को लेकर उनका तुलनात्मक अध्ययन होता था; किंतु बाद में तुलनात्मक साहित्य के लिए एकाधिक भाषा का होना अत्यंत आवश्यक समझा गया अर्थात तुलनात्मक साहित्य के अंतर्गत दो अलग-अलग भाषाओं के रचनाकार और उनकी रचनाओं को लेकर किया गया तुलनात्मक अध्ययन ही तुलनात्मक साहित्य के अंतर्गत समाहित होता है। डॉ. दयाशंकर मिश्र के शब्दों में कहे तो- "एक ही भाषा में लिखी गई दो कृतियों के तुलनात्मक अध्ययन को 'तुलनात्मक साहित्य' नहीं कहा जाता क्योंकि इन दोनों कृतियों में भिन्नता का तत्व प्रायः शून्यवत् या नगण्य होता है। इसीलिए हमें अलग-अलग भाषाओं में लिखी गई कम से कम किन्ही दो कृतियों का अध्ययन करना चाहिए। इस प्रकार के अध्ययन से सामाजिक समस्याओं के विविध मुद्दे हमारे सामने उभर कर आते हैं उदाहरण के लिए छुआछूत की समस्या का वर्णन प्रेमचंद लिखित 'गोदान' और दयापवार (मराठी) में लिखित 'अछूत' में करते हैं। परंतु दोनों के दृष्टिकोण में अंतर है। दातादीन और सिलिया के संबंध का वर्णन करते प्रेमचंद अछूतों को अपनाने की बात करते हैं, परंतु दयापवार अछूतों की गौरवगाथा का कथन करते हुए भी कुछ आश्चर्यजनक सवाल पूछते हैं। जैसे, एक अछूत दूसरे अछूत को अछूत कहकर क्यों तिरस्कार करता है? अथवा एक शिक्षित और साधन संपन्न अछूत अपने निस्सहाय भाइयों से मेलजोल रखने में क्यों संकोच का अनुभव करता है? 'तुलनात्मक साहित्य' द्वारा इन सवालों का उत्तर प्राप्त कर सकते हैं।"[3]

तुलनात्मक साहित्य वैश्विक एकता के उद्देश्य को लेकर चलता है 'साहित्य का एक विस्तृत परिप्रेक्ष्य अध्ययन करना, देश व समाज के बिखरते मानवीय मूल्यों में एकता का संधान करना। तुलनात्मक साहित्य के लिए आवश्यक है कि अध्ययन में एक से अधिक भाषाओं के साहित्य रूपों का समावेश किया जाए । विशेषत: उस

साहित्य का जो राष्ट्रीय परिधि से बाहर विकसित हो रहा है। ऐसी स्थिति में जबकि भारत का पश्चिमी करण होता जा रहा है, पाश्चात्य देशों की सभ्यता, संस्कृति हावी होती जा रही है... मानवीय मूल्य, नैतिक मूल्य एवं जीवन मूल्य पर्याप्त वेग से संकुचित हुए हैं और बदल और बदले भी है। तुलनात्मक साहित्य के द्वारा उनके असमानता परक तथ्यों एवं सत्यों को स्थापित स्थापित करके भारतिय संस्कृति की मूलभूत एकता (वसुधैव कुटुंबकम्) की भावना को पुनः चरितार्थ किया जा सकता है। तुलनात्मक साहित्य परिवार व राष्ट्र को जोड़ने के उद्देश्य को लेकर चल रहा है। इसका लक्ष्य बिखरावबाद, अलगाव को दूर करके ऐक्य स्थापित करने तथा लोगों को इस दिशा में पुनर्जागृत करने का है।'[4]

अब इस बात को नोर्विवादित रूप से स्वीकार कर लिया गया है कि किसी भी साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए एकाधिक भाषा का होना अत्यंत आवश्यक है। और एक सत्य यह भी है कि प्रत्येक व्यक्ति के पास एकाधिक भाषा का संपूर्ण का ज्ञान हो यह मुमकिन भी नहीं है। ऐसे में 'तुलनात्मक साहित्य' में अनुवाद की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है। 'देश की संस्कृति एकता और अखंडता को बचाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि देश की सभी भाषाएं विभिन्न भाषा-भाषी लोगों की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का माध्यम बने। अनुवाद ही एक ऐसा माध्यम है, जो दो भाषाओं में लिखे जा रहे साहित्य के बीच सेतु का काम करता है। साहित्य किसी भी मानव जाति के परिवेश तथा चिंतन की पहचान करने का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। यहां अनुवाद इस साहित्य को देश-काल, वातावरण के आधार पर अपनी भाषा में रूपायित करता है और उस परिवेश तथा स्वभाषा-भाषी पाठक वर्ग को परिचित कराता है, जिसके फलस्वरूप एक नई दिशा अस्तित्व में आती है। यही कारण है कि सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक जो भी परिवर्तन आये उनमें अनुवाद ओं की भी प्रमुख भूमिका रही है।'[5] किसी भी साहित्यिक कृति का अनुवाद करते समय इस बात को ध्यान में रखना अत्यंत आवश्यक हो जाता है कि अनुवाद अर्थात केवल भाषांतरण ही नहीं। अनुवाद ऐसा होना चाहिए जो अनुवाद होकर भी अनुवाद सा न जान पड़े। पढ़ने वाले को यह नहीं लगना चाहिए कि वह अन्य भाषा की रचना का अनुवाद पढ रहा है। उसे तो ऐसा ही लगना चाहिए कि मानो वह मूल रचना को ही पढ़ रहा हो। 'अनुवाद पुरानी सभ्यता के विकास में अपनी भूमिका निभाता रहा है। अनुवाद द्वारा ही एक भाषा में कहीं बात को दूसरे भाषा-भाषी तक पहुंचाया जा सकता है। इसके साथ ही एक और महत्वपूर्ण कार्य होता है, वह यह कि जिस भाषा में अनुवाद किया जाता है वह भाषा भी विकसित होती है। उसके आधार पर गृहित नये शब्द, नये बिंब, नये प्रतीक, नये मुहावरे और कहावतें अनूदित होकर भाषा को और भी समृद्ध बनाती है। इसके द्वारा ही एक भाषा दूसरी भाषा के निकट पहुंचती है, एक देश, प्रदेश व प्रांत की सभ्यता दूसरे देश, प्रदेश व प्रांत की सभ्यता से परिचित होती है, जिसके फलस्वरूप परस्पर संबंध प्रगाढ़ होते हैं। तभी एक नयी सभ्यता का जन्म होता है।'[6]

इस प्रकार अनुवाद तुलनात्मक साहित्य से घनिष्ठ रूप से संबंध रखता है। अनुवाद के बगैर तुलनात्मक साहित्य का काम चल ही नहीं सकता। अनुवाद वह बैसाखी है, जिसके सहारे तुलनात्मक साहित्य का काम चलता है।

संदर्भ सूची

1. 'तुलनात्मक साहित्य', सं.- डॉ. नगेंद्र, पृष्ठ- 12
2. 'तुलनात्मक साहित्य सिद्धांत और समीक्षा', सं.- महावीर चौहान, पृष्ठ- 205-206
3. वहीं, पृष्ठ- 38
4. 'प्रकर', पत्रिका, जनवरी- 65, पृष्ठ- 14
5. वहीं, पृष्ठ- 14
6. वहीं, पृष्ठ- 16